



देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त

भारतीय जीवन में और संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सबसे ऊपर है। भारत में धर्म व्यवस्था वेदों से ही लिया गया है। वेद धर्म का निरूपण करने में पृथक् प्रमाण है। स्मृति आदि तो वेदमूल का ही प्रमाण को स्वीकार करते हैं। इसलिए श्रुति स्मृति में विरोध होने पर श्रुति को ही प्रधान मानना चाहिए। केवल धर्ममूल होने से ही वेदों का आदर नहीं किया जाता है, अपितु विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ होने से और ऊर्चें तत्वों के निरूपण करने से आदरविशेष को हमेशा प्राप्त होते हैं। प्राचीन धर्मसमाज-व्यवहार-आदि विषयों का ज्ञान वेद ही करा सकते हैं। धर्म आदि पुरुषार्थ जिसमें वे वेद कहलाते हैं। सायण ने तो अपौरुषेय वाक्य को वेद कहा है। इष्ट प्राप्ति का और अनिष्ट के निवारण के लिए जो अलौकिक उपाय बताता है वह वेद कहलाता है। और कारिका भी है -

“प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥” इति।

और वे वेद चार हैं। और वे हैं - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद हैं।

इस पाठ में देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त दो सूक्तों को लिया गया है। श्रद्धासूक्त की प्रस्तावना आदि पाठ के उत्तरभाग में दी गई है। प्रारम्भ में देवीसूक्त का वर्णन है।

ऋग्वेद के दशममण्डल का एक सौ पच्चीसवाँ सूक्त वाक्-सूक्त है। इस प्रकृत सूक्त का ऋषि आम्भृणी वाग् है। त्रिष्टुभ आदि छन्दों में यह सूक्त है। इस प्रकृतसूक्त का देवता आत्मा है और इस प्रकृतपाठ में देवीसूक्त का व्याख्यान है। व्याकरण विचार भी स्थान स्थान पर पाठकों के ज्ञान के लिये किया गया है।



उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहितापाठ जान पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों का पदपाठ जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय करने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का व्याख्यान करने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों का सरलार्थ को जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में;
- सूक्त का तात्पर्य और सूक्त के तत्त्व को जान पाने में;
- सूक्त का अर्थ जानकर के सूक्त की महिमा को जान पाने में।

देवीसूक्त

ऋषि- वाक्। छन्द- त्रिष्टुप्, २ जगती। देवता- वाक्।

19.1 मूलपाठ

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।

अहं दधामि द्रविणं हविष्यते सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते॥२॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।

अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं तै वदामि॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥५॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरंवे हन्तवा उं।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥६॥



टिप्पणियाँ



टिप्पणियाँ

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वशन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामू द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥७॥

अहमेव वात इव प्र वाग्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव॥८॥

19.2 अब मूलपाठ को जानेंगे

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥

पदपाठ - अहम् रुद्रेभिः। वसुभिः। चरामि। अहम् आदित्यैः। उत विश्वदेवैः॥ अहम् मित्रावरुणा। उभा। बिभर्मि। अहम् इन्द्राग्नी इति। अहम् अश्विना। उभा॥१॥

अन्वय - अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि, अहम् आदित्यैः उत विश्वदेवैः (चरामि), अहं मित्रावरुणा उभा बिभर्मि, अहम् इन्द्राग्नी अहम् उभा अश्विना (बिभर्मि)।

व्याख्या - मैं सूक्त की द्रष्टा वागाम्भृणी जो ब्रह्म जगत का कारण उसके समान होती हूँ, रुद्र के द्वारा रुद्र ग्यारह है। इस प्रकार की मैं तीसरी हूँ। मैं उमके साथ विचरण करती हूँ। इस प्रकार वसु के साथ भी उसी के समान आचरण करती हूँ। तथा ब्रह्मा के समान शरीर को धारण करती हूँ। इन्द्र अग्नि को भी मैं धारण करती हूँ। दोनों अश्विन कुमारों को भी मैं धारण करता हूँ। मेरे में ही सभी जगत की शक्ति चांदी के समान दिखाई देती है। और माया जगत का विवर्त कारण है। उस प्रकार की माया के द्वारा आधार होने से सङ्ग का भी ब्रह्म ने सभी की उत्पत्ति की है।

सरलार्थ - मैं (वागाम्भृणी) रुद्रगण के साथ उनके समान होकर विचरण करती हूँ। मैं वसुगण, आदित्य गण, और विश्वदेव गण के साथ उनके समान होकर विचरण करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ। मैं ही इन्द्र अग्नि और दोनों अश्विनीकुमार को धारण करती हूँ।

व्याकरण

- मित्रावरुणा - मित्र और वरुण मित्रावरुणा। मित्रावरुणौ इसके स्थान पर यह वैदिक रूप है।
- उभा - उभौ इसका वैदिक रूप है।
- अश्विना - अश्विनौ इसका यह वैदिक रूप है।
- बिभर्मि - भृ-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में बिभर्मि यह रूप है।
- रुद्रेभिः - रुद्र शब्द का तृतीयाबहुवचन में यह वैदिक रूप है।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते॥२॥



पदपाठ- अहम् सोमम्। आहनसम्। बिभर्मि। अहम् त्वष्टारम्। उत। पूषणम्। भगम् अहम्।
दधामि। द्रविणम्। हविष्मते। सुप्रऽअव्यै। यजमानाय। सुन्वते॥२॥

अन्वय - अहम् आहनसं सोमं बिभर्मि, अहं त्वष्टारम् उत पूषणं भगम्, (बिभर्मि)। अहं हविष्मते सुप्रऽअव्ये सुन्वते यजमानाय द्रविणं दधामि।

व्याख्या - मैं पत्थर से पीसे जाने वाले सोम, अथवा शत्रुओं को मारने वर्तमान दिव्य देवों को सोम का पान कराती हूँ। तथा देवों को शोभन हवि देने वाले को अथवा हवि से देवों को तृप्त करने वाले यजमान को धन देती हूँ। सोम को निचोड़ कर हवी देने वाले को यागफल के रूप में मैं ही धन आदि देती हूँ। एवञ्च ब्रह्मणः फलदातृत्वं “फलमत उपपत्तेः” (ब्र. सू. ३. ३. ३८) इत्यधिकरण से आचार्य भाष्यकार के द्वारा समर्थन किया गया है।

सरलार्थ - मैं पत्थर से पीसे जाने वाले सोम को त्वष्टा को पूषा को और भग को धारण करती हूँ। मैं हवि से युक्त, उत्तम हवि को प्राप्त करने वाली हूँ, सोम का अभिषिक्त करने वाले यजमान के लिए धन को धारण करती हूँ अथवा सम्पादन करती हूँ।

व्याकरण

- आहनसम् - आपूर्वक हन्-धातु से असुन्प्रत्यय करने पर आहनसम् यह रूप बना।
- हविष्मते - हविष्-शब्द से मतुप्प्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में हविष्मते यह रूप है।
- सुप्रऽअव्ये - सुपूर्वक प्रपूर्वक अच्-धातु से ईप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में सुप्रऽअव्ये यह रूप है।
- सुन्वते - सु-धातु से श्नुप्रत्यय और शतृप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में सुन्वते रूप है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥३॥

पदपाठ- अहम् राष्ट्री। सम्ऽगमनी। वसूनाम्। चिकितुषी। प्रथमा। यज्ञियानाम्॥ ताम्। मा। देवाः।
वि। अदधुः। पुरुत्रा। भूरिऽस्थात्राम्। भूरि। आऽवेशयन्तीम्॥३॥

अन्वय - अहं राष्ट्री, वसूनां सङ्गमनी, चिकितुषी, यज्ञियानां प्रथमा। तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशयन्तीं मा देवाः पुरुत्रा वि अदधुः।

व्याख्या - मैं राष्ट्र की स्वामी हूँ। यह ईश्वर का नाम है। सभी जगत की स्वामी हूँ। तथा धन देने वाली ज्ञान वाली एवं यज्ञोपयोगी वस्तुओं में सर्वोत्तम हूँ। देवों ने मुझे अनेक स्थानों से धारण किया है मैंने अपनी आत्मा का साक्षात्कार किया उस परं ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया। इसलिये ही



टिप्पणियाँ

यज्ञियों में यज्ञ को चाहने वाले प्रथम मुख्य रूप से मेरे इस प्रकार के गुणों का वर्णन करते हैं। मैं अनेक प्राणियों में आविष्ट हूँ इस प्रकार मेरी विश्वरूप की अवस्था का वर्ण किया है। जो कुछ करते हैं वे सभी मेरे लिए ही करते हैं यह अर्थ है।

सरलार्थ - मैं राष्ट्र की स्वामी हूँ, धन का संग्रह करने वाली हूँ, चेतन के समान, यज्ञ को चाहने वालों की मुख्या हूँ। उस प्रकार विशिष्ट गुण से युक्त, अनेक रूप में अनेक वस्तुओं में अवस्थित हूँ। मुझे देव अनेक स्थान पर रखते हैं।

व्याकरण

- **चिकितुषी** - किद्-धातु से क्वसु प्रत्यय और डीप् करने पर प्रथमा एकवचन में चिकितुषी रूप बना।
- **पुरुत्रा** - पुरु शब्द से सप्तमी अर्थ में त्रा प्रत्यय करने पर पुरुत्रा रूप है।
- **व्यदधुः** - वि पूर्वक धा-धातु से लुङ् प्रथमपुरुषबहुवचन में व्यदधुः यह रूप है।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥४॥

पदपाठ- मया। सः। अन्नम्। अत्ति। यः। विपश्यति। यः। प्राणिति। यः। ईम्। शृणोति। उक्तम्॥
अमन्तवः। माम्। ते। उप। क्षियन्ति। श्रुधि। श्रुत। श्रद्धिवम्। ते। वदामि॥४॥

अन्वयः - यः विपश्यति, यः प्राणिति, यः इम् उक्तं शृणोति, सः मया अन्नम् अत्ति। अमन्तवः ते माम् उप क्षियन्ति। हे श्रुत, श्रुधि, ते श्रद्धिवं वदामि।

व्याख्या - मेरी सहायता से प्राणी अन्न खाते हैं। और जो देखते हैं। प्रकाशित होता है यह अर्थ है। और जिससे प्राणी श्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं वह भी मेरे द्वारा ही करते हैं। और जो बोलते और सुनते हैं वह भी मेरे द्वारा ही। जो इस प्रकार अन्तर्यामि रूप से स्थित मुझको नहीं जानते हैं वे मनुष्य क्षीण हो जाते हैं। क्षीण हुए संसार के द्वारा हीन होते हैं। मुझको नहीं मानते यहाँ मेरे विषय में ज्ञान नहीं रखते हैं यह अर्थ है। हे सखा सुनो। मेरी वाणी को सुनो। किस वाणी को सुनो। श्रद्धा के समान। श्रद्धिः श्रद्धा को कहते हैं। उससे युक्त श्रद्धायत्न से प्राप्त करो। इस प्रकार श्रद्धा योग्य ब्रह्मात्मक वस्तु का तुम्हें उपदेश देती हूँ।

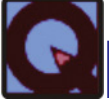
सरलार्थ - जो अन्न खाती हो, देखती हो, प्राण को धारण करती हो, कहे हुए विषय को सुनते हो, वह मेरे द्वारा ही यह सभी कार्य होते हैं। मेरी महिमा को जो नहीं जानते हैं वे विनाश को प्राप्त होते हैं। हे सखा, सुनो श्रद्धा के विषय में मैं तुम्हारे सम्मुख कहती हूँ।

व्याकरण

- **अत्ति** - अद्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में अत्ति यह रूप है।

देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त

- **विपश्यति** - विपूर्वक दृश्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में विपश्यति यह रूप है।
- **प्राणिति** - प्रपूर्वक अन्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में प्राणिति रूप है।
- **शृणोति** - 'श्रु श्रवणे' इस धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में शृणोति यह रूप है।
- **उपक्षियन्ति** - उप पूर्वक क्षि-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में उपक्षियन्ति यह रूप है।
- **श्रुधि** - श्रु-धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में श्रुधि यह रूप है। शृणु इसका यह वैदिक रूप है।
- **अमन्तवः** - मानता नहीं अमन्तवः यह रूप है।



पाठगत प्रश्न 19.1

1. देवीसूक्त का ऋषि कौन, छन्द क्या, और देवता कौन है?
2. देवीसूक्त में अहंपद से कौन परामर्श देता है?
3. अश्विनौ इसका वैदिक रूप क्या है?
4. उभा इसका लौकिक रूप क्या है?
5. रुद्रशब्द का तृतीयाबहुवचन में वैदिक रूप क्या है?
6. रुद्रो के साथ मैं (वागाम्भृणी) कैसे चलती हूँ?
7. आहनसम् इसका क्या अर्थ है?
8. सुप्राव्ये यह रूप कैसे हुआ?
9. वसूनाम् इसका क्या अर्थ है?
10. यज्ञियानाम् इसका क्या अर्थ है?
11. चिकितुषी यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
12. अमन्तवः इसका क्या अर्थ है?
13. प्राणिति यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
14. श्रुधि इसका लौकिक रूप क्या है?
15. पुरुत्रा यह रूप कैसे हुआ?



टिप्पणियाँ



टिप्पणियाँ

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥५॥

पदपाठ- अहम् एव स्वयम् इदम् वदामि जुष्टम् देवेभिः। उत मानुषेभिः॥ यम् कामये। तमुग्रम् उग्रम् कृणोमि। तम् ब्रह्माणम् तम् ऋषिम् तम् सुमेधाम्॥५॥

अन्वय - अहम् एव स्वयं देवेभिः उत मानुषेभिः जुष्टम् इदं वदामि। यं कामये तं तम् उग्रं कृणोमि। तं ब्रह्माणं, तम् ऋषिं, तं सुमेधाम् (कृणोमि)।

व्याख्या - मैं स्वयं ही ब्रह्मात्मक वस्तु को कहती हूँ अथवा उपदेश देती हूँ। देवों के द्वारा देव इन्द्र आदि के द्वारा भी सेवित हूँ। और मनुष्यों के द्वारा भी सेवित हूँ। इस प्रकार जो यजमान मेरी स्तुति करता है मैं उस पुरुष की कामना को पूर्ण करती हुई उसकी रक्षा करती हूँ, उसको शक्तिशाली बना देती हूँ। सबसे श्रेष्ठ बना देती हूँ। उसे मैं स्तोता ब्रह्माण बना देती हूँ। उसकी बुद्धि को ऋषि के मति के समान बना देती हूँ। उसको ही बुद्धिमान बना देती हूँ।

सरलार्थ - मैं स्वयं ही देवों के लिए और मनुष्यों के लिए इन अभीष्ट वाक्य को कहती हूँ। मैं जिसे चाहती हूँ उसे बलवान, ब्रह्माण, मन्त्रद्रष्टा, और मेधावि बना देती हूँ।

व्याकरण

- **जुष्टम्** - जुष्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में जुष्टम् यह रूप बनता है।
- **कृणोमि** - कृ-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में करोमि इसका यह वैदिकरूप है।
- **सुमेधाम्** - शोभना मेधा यस्य तम् यहाँ बहुव्रीहि समास है।
- **देवेभिः** - देवैः इसका वैदिक रूप है।
- **मानुषेभिः** - मानुषैः इसका यह वैदिकरूप है।
- **कामये** - कम्-धातु से लट् आत्मनेपद उत्तमपुरुष एकवचन में कामये यह रूप है॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥६॥

पदपाठ - अहम् रुद्राय धनुः। आ। तनोमि। ब्रह्मद्विषे। शरवे। हन्तवै। ऊँ इति॥ अहम् जनाय। समदम्। कृणोमि। अहम्। द्यावापृथिवी इति। आ। विवेश॥६॥

अन्वय - अहं ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै रुद्राय धनुः आ तनोमि। अहं जनाय समदं कृणोमि। अहं द्यावापृथिवी आ विवेश।

व्याख्या - प्राचीन काल में त्रिपुर राक्षस को जीतने के लिए रुद्र का षष्ठी अर्थ में चतुर्थी है। महादेव के धनुष को विस्तृत करती हूँ। उसका विस्तार करती हूँ। किसलिये। ब्रह्म से द्वेष करने



वाले ब्राह्मणों का हिंसक त्रिपुरनिवासी असुर के विनाश के लिए मारने के लिये विस्तार करती हूँ। 'शृ हिंसायाम्' इससे 'शृस्वस्निहि' इत्यादि से उप्रत्यय हुआ। 'क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्' इससे कर्म में सम्प्रदान होने से चतुर्थी हुई। उशब्द पूरक है। मैं ही संग्राम करती हूँ। स्तोता मनुष्यों के लिये शत्रु के साथ मैं ही सङ्ग्राम करती हूँ। तथा द्यौ पृथिवी में और दिन रात में मैं ही व्याप्त होकर के रहती हूँ।

सरलार्थ - मैं ही रुद्र के लिए ब्राह्मणों के द्वेषी त्रिपुर राक्षस को मारने के लिए उसके धनुष को विस्तृत करती हूँ। मैं ही मनुष्यों के लिये संग्राम करती हूँ। मैं ही द्युलोक और भूलोक में व्याप्त हूँ।

व्याकरण

- **तनोमि** - तन्-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में तनोमि रूप बनता है।
- **शरवे** - शृ-धातु से उ प्रत्यय करने पर शरुः हुआ इसके बाद चतुर्थी एकवचन में शरवे यह रूप बना।
- **हन्तवै** - हन्-धातु से तुमुप्रत्यय के लिए वैदिक तवै प्रत्यय करने पर हन्तवै रूप बना।
- **कृणोमि** - कृ-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में करोमि इसका यह वैदिक रूप है।
- **विवेश** - विपूर्वक विश्-धातु से लिट् उत्तमपुरुष एकवचन में विवेश रूप बना।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिर्प्स्वशन्तः समुद्रे।

ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपं स्पृशामि॥७॥

पदपाठ - अहम् सुवे। पितरम्। अस्य। मूर्धन्। मम। योनिः। अप्सु। अन्तरिति। समुद्रे॥ ततः। वि। तिष्ठे। भुवना। अनु। विश्वा। उत। अमूं। द्याम्। वर्ष्मणा। उपं। स्पृशामि॥७॥

अन्वय- अहम् अस्य मूर्धन् पितरं सुवे, मम योनिः अप्सु अन्तः समुद्रे। ततः विश्वा भुवना अनु वितिष्ठते। उत अमूं द्याम् वर्ष्मणा उप स्पृशामि।

व्याख्या - 'द्यौः पिता' (तै. ब्रा. ३. ७. ५. ४) इस श्रुति के अनुसार द्यौ पिता है। पिता द्यौ को मैं उत्पन्न करती हूँ। 'आत्मान आकाशः सम्भूतः' (तै. आ. ८. १) यह श्रुति है। और क्या है कहा गया है। आकाश परमात्मा का मस्तक है। उस कारण भूत से ही यह कार्य जगत हुआ जिस प्रकार सभी धागों में वस्त्र रहता है उसी प्रकार यह है। और मेरा स्थान कारण समुद्र में है। समुद्र के समान हम प्राणियों की उत्पत्ति समुद्र परमात्मा से हुई है। उस जल में व्याप्त धैर्य वृत्ति वाला जो ब्रह्म चेतन है वह मेरा ही कारण है। इस प्रकार का मैं इस ससार में सभी और से व्याप्त होकर के रहता हूँ। 'समवप्रविभ्यः स्थः' (पा. १. ३. २२) इससे आत्मनेपद है। और भी द्यौ में स्थित स्वर्गलोक की रचना भी मेरे द्वारा ही की गई है। यह उपलक्षण है। इसको उपलक्षित करके विकार हुआ वर्षा का कारणभूत से माया आत्मा के द्वारा मेरी देह को ही स्पृश करता है। अथवा, इस भूलोक के शिर के ऊपर पिता द्यौलोक है। समुद्र में जलधारा में तालाब आदि के मध्य में मेरी



टिप्पणियाँ

योनि कारणभूत अम्भृणाख्य ऋषि है। अथवा समुद्र में अन्तरिक्ष में अपनी माया में और देव शरीर में मेरा कारणभूत ब्रह्म चेतन है। उन सबका कारण होने से मैं सम्पूर्ण भुवन में व्याप्त हूँ।

सरलार्थ - मैं ही इस पृथिवी परमात्मा के शिर के ऊर्ध्वभाग को अथवा द्युलोक की रचना करती हूँ। मेरी उत्पत्ति परमात्मा के सभी व्यापक ब्रह्म चेतन में है। जिससे मैं सम्पूर्ण भुवन में प्रवेश करके विविध रूप से रहती हूँ। और दूरस्थ द्युलोक का मेरे शरीर के साथ मैं स्पृश करती हूँ।

व्याकरण

- **सुवे** - सू-धातु से लट आत्मनेपद में उत्तमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।
- **मूर्धन्** - मूर्ध्नि-इसका सप्तमी एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- **वितिष्ठे** - वि पूर्वक स्था-धातु से आत्मनेपद उत्तमपुरुष एकवचन में वितिष्ठे यह रूप है।
- **विश्वा, भुवना** - नपुंसकलिङ्ग में बहुवचन में वैदिक यह दो रूप हैं। लौकिक विश्वानि और भुवनानि दो रूप हैं।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव।॥८॥

पदपाठ - अहम्। एव। वातः। इव। प्र। वामि। आरभमाणा। भुवनानि। विश्वा। परः। दिवा। परः। एना। पृथिव्या। एतावती। महिना। सम्। बभूव।॥८॥

अन्वय - अहम् एवभुवनानि विश्वा आरभमाणा वातः इव प्रवामि। दिवा परः एना पृथिव्याः परः महिना एतावती सम्बभूव।

व्याख्या - विश्व के सभी भुवन प्राणियों का कार्य आरम्भ करने का कारण रूप से मैं ही अपने चारों ओर से अधिष्ठाता के रूप में प्रवृत्त होता हूँ। वायु के समान। जैसे वायु दूसरे को प्रेरित करती हुई अपनी इच्छा से बहती है उसी प्रकार। सभी वेद में कहा गया है। द्यौ लोको ऊपर है। पर इस सकारान्त को ऊपर अर्थ में है, तथा अध यह नीचे अर्थ में। उनके योग में तृतीया विभक्ति सभी जगह दिखाई देती है। द्यौ आकाश के ऊपर है। एना पृथिव्या। 'द्वितीयाटौस्वेनः' (पा. २. ४. ३४) इससे यहाँ एना आदेश हुआ। इस पृथिवी से परे है। द्यौ और पृथिवी का उपादान उपलक्षण है। इस उपलक्षण से सभी विकार उत्पन्न हुए उनसे वर्तमान सङ्ग उदासीनकूटस्थब्रह्मचेतन रूप मेरी महिमा से यह सब हुआ। यह शब्द के द्वारा सभी को परामर्श देती है। यह इसका परिमाण है। 'यत्तदेतेभ्य परिमाणे ...' (पा. ५. २. ३९) इससे वतुप्। 'आ सर्वनाम्नः' (पा. ६. ३. ९१) इससे आत्व। सभी जगत की आत्मा मैं हूँ। 'महच्छब्दादिमनिचि श्टेः' (पा. ६. ४. १५५) इससे तिलोप हुआ।

सरलार्थ - मैं ही समस्त भुवन की रचना करती हुई वायु के समान प्रवाहित होती हूँ। अपनी महिमा से द्युलोक और पृथिवी का उल्लङ्घन करके मैं इस प्रकार सभी जगत की आत्मा हूँ।

व्याकरण

- **आरभमाणा** - आपूर्वक रभ्-धातु से शानच्प्रत्यय और टाप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में आरभमाणा रूप बना।
- **प्रवामि** - प्रपूर्वक वा-धातु से लट उत्तमपुरुष एकवचन में प्रवामि यह रूप बना है।
- **विश्वा** - नपुंसकलिङ्ग द्वितीयाबहुवचन में विश्वानि इसका यह वैदिक रूप है।
- **एना** - अदस्-शब्द का तृतीया एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- **महिना** - महिमन्- शब्द का तृतीया एकवचन में वैदिक रूप है। लौकिक में तो महिम्ना यह रूप बना है।
- **संबभूव** - सम्पूर्वक भू-धातु से लिट उत्तमपुरुष एकवचन में संबभूव यह रूप बना।



पाठगत प्रश्न 19.2

1. देवेभिः इसका लौकिक रूप क्या है?
2. जुष्टम् इसका क्या अर्थ है?
3. मानुषेभिः यह रूप कहाँ पर दिखाई देता है?
4. सुमेधाम् इसका समास विग्रह सहित लिखो।
5. रुद्राय यहाँ पर किस अर्थ में चतुर्थी है?
6. कृणोमि इसका लौकिक रूप क्या है?
7. शरवे यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
8. हन्तवै यह कैसे सिद्ध हुए?
9. वितिष्ठे यह रूप कैसे हुआ?
10. सुवे यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
11. भुवना इसका लौकिक रूप क्या है?
12. परः यह सकारान्तकिस अर्थ में है।
13. परस्तात् इसके योग में कौन सी विभक्ति होती है?
14. एना यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
15. महिना यह रूप कहाँ दिखाई देता है?



टिप्पणियाँ



टिप्पणियाँ

19.3 देवीसूक्त का आशय

मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत, और आध्यात्मिक। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के अन्तर्गत देवीसूक्त का आध्यात्मिक ऋचाओं की कीर्ति कही गई है। वैसे ही आध्यात्मिक-ऋचाओं का स्वरूप और देवीसूक्त के स्वरूप को निरुक्त में निरुक्तकार ने कहा है - अब आध्यात्मिकस्वरूप उत्तमपुरुष के योग में अहम इस का प्रयोग किया गया है। जैसे इन्द्र वैकुण्ठ, लवसूक्त वागाम्भृणी इत्यादि। परोक्षकृत और प्रत्यक्षकृत मन्त्र अधिकांश है और आध्यात्मिक मन्त्र कम है। अम्भृण ऋषि की कन्या वाग् इसकी ऋषिका है। दूसरा ऋक् जगती, शिष्ट त्रैष्टुभ छंद है। और विनियोग है। सप्तशती पाठ के अङ्गजप में भी तान्त्रिक विनियोग इसका जानना चाहिए। दार्शनिक अपनी अपनी तन्त्र सिद्धान्त के अनुसार इस सूक्त की व्याख्या की। उस व्याख्यान भेद आदि के द्वारा हमेशा नए रूप में विद्वानों में हृदय में रहती है। तथा ब्रह्मविदुषीवाग् आत्मा के ब्रह्मरूप का अनुभव करती हुई और ब्रह्मण जगत्कारण से अपनी अपने कर्ता भाव का गुणगान करती है। तथा वेदान्तसूत्र 'जन्माद्यस्य यतः' है। केनोपनिषद में उमा-हैमवतीसंवाद में भी शक्ति महानता को प्रकाशित किया है। नैयायिक अहङ्कार से परे ब्रह्मज्ञ का ब्रह्मीभूत का स्वाभाविककी अनुभूति यह दिशा अद्वैतवेदान्त अनुयायो के द्वारा व्याख्या की गई। स्फोटब्रह्मवादि वैयाकरण पुन बोलना ही जगत के जन्म का कारण है। सूक्त के द्वारा कहा गया है की वाणी ही उन नैयायिक स्फोटाख्या से परे वाणी ही है। उसके द्वारा ही यह जगत सुनता है - अहमेववात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा इति। उसके अनुसार ही वाक्य पदीयपद का अनुसन्धान करना चाहिए - अनादिनिधनं ब्रह्मशब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ इति। इसलिये व्याकरणदार्शनिक के द्वारा स्फोटपरक व्याख्या की गई है। और शाक्त आदि शक्ति महामाया को संसार का सर्जन-परिपालन और विनाशकारी मानते हैं और सप्तशती में कहा गया है -

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥ इति।

इस प्रकार इसकी अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हुए इस सूक्त का अत्यधिक रूप से प्रचार वैदिकवाङ्मय में विशेष रूप से किया गया है।

वह वाणी ही वसुरुद्र आदित्य आदिदेवता रूप से विचरण करती है। वह ही इन्द्र अग्निमित्रवरुण आदि को धारण करती है। वस्तुतः तो यजमान उसको ही सोम आदि हवि के द्वारा यागो में पूजता है। वह ही जगत की स्वामिनी धन देने वाली जीवभाव से भूतो में प्रवेश करके विविधरूप से रहती है। वस्तुतः तो वह शक्तिरूप से अधिष्ठात्री प्राणियों का देखना, सुनना, प्राण आदि कार्य भी वह ही करती है। और कहा गया है -

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषुसततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥ इति।

वह ही प्रसन्न होने पर उपासक के लिये ब्रह्म आदिदेवपद को ऋषित्व अथवा विद्या देती है। वह ही वाणी के द्वारा असुर आदिशत्रुओं को मारकर प्रजाओं की रक्षा करती है। त्रिपुर आदि तो उसके निमित्तभूत है। उसकी शक्ति के कारण ही वे शक्तिशाली है। वेद में कहा गया है -

अहं रुद्राय धनुरातनोमि। ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ॥
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश॥ इति।

यहाँ पर यह अनुसन्धान करना चाहिए की जो महामाया प्रभाव से ही मधुसूदन अपने नाम को सार्थक करती है। महामाया से मोहित होकर मधुकैटभ ने वर प्रदान को अङ्गीकार करके विष्णु के हाथ से अपनी इच्छा से मृत्यु का वरण किया। इसलिए ही हरि उनको मारना चाहते थे और सप्तशती में कहा गया है -

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ।
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो त्रियतामिति केशवम्॥ इति।

वह वाणी ही भूर्भुवःस्वः लोक को चारों ओर से व्याप्त करके विराजमान होती है। लोक से परे वह सभी लोक को अपनी महिमा से उत्पन्न करती हुई वाणी की कीर्ति को कहती है।



पाठ का सार-१

देवीसूक्त में आठ मंत्रों के द्वारा जो कहा गया है उसे साररूप से कहते हैं। सभी मन्त्रों में द्रष्टा रूप से अहमिति पद से वागाम्भृणी ऋषिका को जानना चाहिए। वह वागाम्भृणी रुद्रो के, आदित्यो के, और विश्वदेवों के, साथ उनके समान होकर के विचरण करती है। इन्द्र अग्नि और अश्विन कुमारों को वह धारण करती है। वह सोम को धारण करती है, त्वष्टा पूषा और भग को धारण करती है। धन की वह स्वामी है। वह राष्ट्र, भूमि, सङ्गम, यज्ञियों में प्रथम है। उसको अनेक स्थानों से देव और पुरुष धारण करते हैं। जो अन्नको खाते हैं, देखते हैं, प्राणों को धारण करते हैं, कहे हुए विषयों को सुनते हैं, वह मेरे द्वारा ही ये सभी कार्य करते हैं। मेरी महिमा को जो ये नहीं जानते हैं, वे विनाश को प्राप्त होते हैं। हे विश्रुत, सुनो जिस विषय को मैं तुम्हारे सम्मुख कहती हूँ। मैं स्वयं ही देवों के लिये और मनुष्यों के लिये इस वाक्य को कहती हूँ। मैं जिसको चाहती हूँ उसको ही बलवान, ब्रह्माण, मन्त्रद्रष्टा, और मेधावी बना देती हूँ। मैं रुद्र के लिये ब्रह्मद्वेष कारी घातक शत्रुओं को मारने के लिये उसके धनुष को ग्रहण करती हूँ। मैं ही लोगो के लिये संग्राम करती हूँ। मैं ही द्युलोक और भूलोक में प्रवेश करती हूँ। मैं ही इस पृथिवी परमात्मा के शिर के ऊर्ध्वभाग को अथवा द्युलोक की रचना करती हूँ। मेरी उत्पत्ति परमात्मा के समान सभी जगह व्यापक है अथवा ब्रह्म चेतन में व्यापक है। जिससे मैं सम्पूर्ण भुवन में प्रवेश करके विविधरूप से रहती हूँ। और दूरस्थद्युलोक मेरे द्वारा ही मेरे शरीर को मैं ही स्पृश करती हूँ। मैं ही समस्तभुवन की रचना करती हुई वायु के समान चलती हूँ। अपनी महिमा से ही द्युलोक और पृथिवी का उल्लङ्घन करके मैं इस प्रकार सभी जगत की स्वामी होकर रहती हूँ।



टिप्पणियाँ

श्रद्धासूक्त



टिप्पणियाँ

वेदों में मन के विभिन्न भावका अत्यधिक स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। मन का सामर्थ्य को जानना अत्यधिक कठिन है। कुछ मनुष्य अत्यधिक कार्य को पूर्ण कर सकते हैं, भयंकर युद्ध में निर्भय होकर सेना का संचालन करते हैं, कुछ ध्यान आदि से इन्द्रियों से परे का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्यों के भेद का कारणही उसका मन ही है। फिर भी मन के सूक्ष्म भावक्या है, उनका परिणाम क्या है, भावों का संरक्षण कैसे किया जा सकता है, भाव के दृढ करने के बाद क्या होता है इत्यादिविषय भी वेद में प्राप्त होते हैं। श्रद्धा उसी प्रकार का एक मनोभाव है। लोक में सामान्यरूप से मनुष्य जो कुछ होता है वहा पर उसकी श्रद्धा है ऐसा कह सकते हैं। कार्य में प्रेरक विश्वास ही श्रद्धा है ऐसा कह सकते हैं। अर्थात् वैसा विश्वास जो विश्वासी मनुष्य को विश्वास के अनुसार ही कार्य करने की प्रेरणा करता है। क्रियाशील विश्वास है यह भी उसका अर्थात् है और भी आस्तिक्यबुद्धि: श्रद्धा यह श्रद्धाशब्द का अर्थकठोपनिषद शाङ्करभाष्य में कहा गया है। श्रद्धा की महानता के गुण गीता में भी गाये हैं -

‘श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति’॥

और भी -

‘योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः’॥

इस प्रकार अनेक जगह श्रद्धा की स्तुति प्राप्त होती है। इस पाठ में वेद में श्रद्धाविषय में क्या कहा गया है उसको प्रस्तुत किया गया है। इस ऋग्वेद के श्रद्धासूक्त का ऋषि: श्रद्धा कामायनी, देवता श्रद्धा, छन्दः अनुष्टुप् है। यह ऋग्वेद के दशवे मण्डल में १५१ संख्या का सूक्त है।

19.4 मूलपाठ-श्रद्धासूक्त

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥१॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि॥२॥
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि॥३॥
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्यंश्याकृत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥४॥
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परिं।
श्रद्धां सूर्यस्य निमृचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥५॥

19.5 श्रद्धासूक्त की व्याख्या

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।

श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥१॥

पदपाठ - श्रद्धया। अग्निः। सम्। इध्यते। श्रद्धया। हूयते। हविः॥ श्रद्धाम्। भगस्य। मूर्धनि। वचसा। आ। वेदयामसि॥१॥

अन्वय - श्रद्धया अग्निः समिध्यते। श्रद्धया हूयते हविः। भगस्य मूर्धनि श्रद्धां वचसा आ वेदयामसि।

व्याख्या - पुरुष में आयी हुई अभिलाषा विशेष को श्रद्धा कहते हैं। उस श्रद्धा के द्वारा गार्हपत्य आदि अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। जिस पुरुष में श्रद्धा रूपी अग्नि विशेष आदर को प्राप्त होती है, वह पुरुषही अग्नि को प्रज्वलित कर सकता है अन्य दूसरा नहीं। श्रद्धा के द्वारा ही पुरोडाश आदि हवि की आहुति दी जाती है। अर्थात् अग्नि में डाली जाती है।

अथवा इस सूक्त के द्रष्टा उस श्रद्धा नाम वाली अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। ऊपर कहे श्रद्धा के लक्षणा का श्रद्धा का अभिमानी देवता सेवनीय योग्य धन के शीश पर सबसे प्रधानभूत होकर के रहने के कारण वाणी से अथवा स्तोत्र से विशेष रूप से स्तुति करता हूँ। इस कर्म को विशेष रूप से जानते हैं।

सरलार्थ - श्रद्धा के द्वारा अग्नि प्रज्वलित होती है, श्रद्धा के द्वारा हवि का दान किया जाता है, श्रद्धा जो धन का प्रमुख है, उस श्रद्धा की स्तुति करते हैं।

व्याकरण

- **समिध्यते** - सम्-पूर्वक इन्ध-धातु से कर्म रूप है (तप्रत्ययऔर यक करने पर) (प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है)।
- **हूयते** - हु दानादयोः इस अर्थ की धातु से कर्म में रूप है (प्रथमपुरुष एकवचनका यह रूप है)।
- **आ वेदयामसि** - आ पूर्वक विद् धातु से णिच लट् उत्तमपुरुष बहुवचन का यह रूप है।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।

प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं मे उदितं कृधि॥२॥

पदपाठ - प्रियम्। श्रद्धे। ददतः। प्रियम्। श्रद्धे। दिदासतः॥ प्रियम्। भोजेषु। यज्वस्सु। इदम्। मे। उदितम्। कृधि॥२॥

अन्वय- (हे) श्रद्धे, ददतः प्रियम् (कृधि), (हे) श्रद्धे, दिदासतः प्रियं (कृधि), भोजेषु यज्वसु प्रियं (कृधि), मे इदम् उदितं (प्रियं) कृधि।



टिप्पणियाँ



टिप्पणियाँ

व्याख्या – हे श्रद्धा घी पुरोडाश आदि देने वाले यजमान का प्रिय अभीष्टफल को पूर्ण करो। और देने की इच्छा वाले का कल्याण करो। मेरे सम्बन्धियों में भोगार्थियों में और यज्ञ कर्ताओं को मनचाह फल देने की अनुकम्पा करे अथवा कल्याण करो।

सरलार्थ – इस मन्त्र में श्रद्धा के प्रति कहा गया है की हे श्रद्धा घी पुरोडाश आदि देने की इच्छा वाले उदारयजमान की अभीष्टपूर्ति करो। हे श्रद्धा हमारे इस वचन की अभीष्टपूर्ति करो।

व्याकरण

- **ददत्** – दा-धातु से शतृप्रत्ययान्त षष्ठी एकवचन का रूप है। ददत् यह प्रातिपदिक है। यहाँ बार -बार दो इस अर्थ में है।
- **दिदासत्** – दा-धातु से सनऔर शतृप्रत्यय करने पर दिदासत् प्रातिपदिक बनता है। उसका षष्ठी एकवचन में यह रूप बनता है। देने की इच्छा यह उसका अर्थ है।
- **उदितम्** – वद् व्यक्तायां वाचि इस अर्थ वाली धातु से क्तप्रत्ययान्त का रूप है। अथवा उत्-उपसर्ग से इण् गतौ इस धातु से क्तप्रत्यय करने पर उदित यह रूप होता है।
- **कृधि** – कृधातु से लुङ् मध्यमपुरुष एकवचन का रूप है। कुरु इस अर्थ में ही प्रयोग होता है।

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।

एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि॥३॥

पदपाठ – यथा। देवाः। असुरेषु। श्रद्धाम्। उग्रेषु। चक्रिरे॥ एवम्। भोजेषु। यज्वऽसु। अस्माकम्। उदितम्। कृधि॥३॥

अन्वय – देवाः यथा उग्रेषु असुरेषु श्रद्धां चक्रिरे, एवं भोजेषु यज्वसु (त्वं श्रद्धां कृधि) अस्माकम् उदितं कृधि।

व्याख्या – देव इन्द्र आदि ने असुरो के विषय में मारने का निश्चय किया उसी प्रकार तुम भी भक्तो को मनचाह फल प्रदान करो। इसी प्रकार श्रद्धावान भजन करने वाले भक्तो का, भोगार्थियों का और यजमानो का भी प्रिय करो।

सरलार्थ – जैसे देव असुरो को मारने का निश्चय किया उसी प्रकार श्रद्धा उदार भावना वाले यजमानो का भी कल्याण करे। हमारी वाणी के इस वचन की अभीष्टपूर्ति करो।

व्याकरण

- **असुरेषु** – असुर इस प्रातिपदिक का सप्तमी एकवचन में यह रूप बनता है।
- **चक्रिरे** – कृञ् करणे इस धातु से लिट्-लकारप्रथमपुरुष बहुवचन का यह रूप है। (आत्मनेपदपक्ष में)



- उदितम् - वद् व्यक्तायां वाचि इस अर्थ वाली धातु से क्तप्रत्ययान्त का रूप है।
- कृधि - कृधातु से वैदिक रूप बनता है। कुरु इस अर्थ में ही प्रयोग होता है।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।

श्रद्धां हृदय्या आकृत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥४॥

पदपाठ - श्रद्धाम् देवाः। यजमानाः। वायुगोपाः। उपा। आसते॥ श्रद्धाम् हृदय्या। आकृत्या। श्रद्धया। विन्दते। वसु॥४॥

अन्वय - वायुगोपाः देवाः यजमानाः च श्रद्धाम् उपासते, हृदय्या आकृत्या श्रद्धाम् (उपासते)। श्रद्धया वसु विन्दते।

व्याख्या - वायु देवों की और मनुष्यों की रक्षा करता है, उसी प्रकार वे लोग अपने हृदय मंत्र मन में सकल्प करके श्रद्धा देवी की उपासना करते हैं, उस विधि रूप संकल्प से सभी मनुष्य श्रद्धा के समान ही आचरण करते हैं। किस प्रकार करते हैं कहा की -जिस कारण से श्रद्धा के द्वारा विशाल धनकोष को श्रद्धावानमनुष्य प्राप्त करे यह अर्थ है।

सरलार्थ - वायु के द्वारा रक्षित सभी देव तथा यजमान अपने हार्दिक संकल्प से केवल श्रद्धा की उपासना करते हैं। श्रद्धा के द्वारा ही मनुष्य सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं।

व्याकरण

- वायुगोपाः - वायुः गोपा (रक्षिता) जिनकी उनको वायुगोपाः कहते हैं।
- उपासते - उपपूर्वक आस्- धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष बहुवचनान्त का यह रूप है।
- यजमानाः - यज्-धातु से शानच्-प्रत्ययान्त का यह रूप है।
- आकृत्या - आकृति इस प्रातिपदिक का यह तृतीयान्त का रूप है। संकल्प यह इसका अर्थ है।
- विन्दते - विद्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।

श्रद्धां सूर्यस्य निम्नुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥५॥

पदपाठ - श्रद्धाम् प्रातः। हवामहे। श्रद्धाम् मध्यन्दिनम् परि॥ श्रद्धाम् सूर्यस्य निम्नुचि। श्रद्धे। श्रत् धापया इह। नः॥५॥

अन्वय - (वयं) प्रातः श्रद्धां हवामहे, मध्यन्दिनं परि श्रद्धां (हवामहे), सूर्यस्य निम्नुचि श्रद्धां (हवामहे)। (हे) श्रद्धे इह नः श्रत् धापया।



टिप्पणियाँ

देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त

व्याख्या – श्रद्धा देवी की प्रातःकाल उपासना करते हैं। तथा मध्यन्दिनं परि यहाँ पर लक्षण परे होने पर कर्मप्रवचनीय हुआ। मध्यन्दिन को परिलक्षित करके। मध्यन्दिन यह अर्थ है। दोपहर में भी श्रद्धा की उपासना करते हैं। सभी का प्रेरक सूर्य के अस्त होने पर भी उसी श्रद्धा की उपासना करते हैं। इस रूप वाली हे श्रद्धा हमे इस लोककार्यो में श्रद्धा से युक्त बनाओ।

सरलार्थ-हम प्रातःकाल मध्याह्न में और सूर्यास्तसमय में श्रद्धा की उपासना करते हैं। हे श्रद्धा इस लोक में हमे श्रद्धा से युक्त बनाओ।

व्याकरण

- **हवामहे** – हू- धातु से लट्-लकार उत्तमपुरुष बहुवचन का यह रूप है।
- **धापय** – धा-धातु से णिच् लोट्-लकार मध्यमपुरुष एकवचन का यह रूप है।
- **श्रद्धे** – श्रद्धाशब् का सम्बोधन एकवचन में श्रद्धे यह रूप है।
- **निम्फुचि** – नि+म्फुच् धातु से निष्पन्नशब्द है।



पाठगत प्रश्न 19.3

1. श्रद्धासूक्त का ऋषि छन्द और देवता कौन है?
2. श्रद्धयाग्निः यहाँ पर अग्निपद से किस अर्थ की विवेचना की गई है?
3. मूर्धनि इसका क्या अर्थ है?
4. क्या देकर के यजमान का कल्याण करते हैं?
5. यज्वसु इसका क्या अर्थ है?
6. कृधि इसका लौकिक रूप क्या है?
7. आकूत्या इसका क्या अर्थ है?
8. वसु इसका क्या अर्थ है?
9. किस प्रकार का धन मनुष्य प्राप्त करते हैं?
10. समिध्यते इसका क्या अर्थ है?

19.6 श्रद्धासूक्त का सार

ऋग्वेद के दशममण्डल में श्रद्धासूक्त है (१०।१५१)। इस सूक्त में श्रद्धा की स्तुति देवतारूप से की गई है। यहाँ पर पाँच ही मन्त्र हैं, और इसका विषय पूर्व से ही कम होने पर भी इस सूक्त का अत्यन्त महत्व है। श्रद्धा-इस शब्द का अर्थ ही कही पर कार्यविशेष में अथवा वचनविशेष में अपने कार्य को आदर सहित प्रकट करता है। वस्तुतः श्रद्धा के द्वारा सम्पादित कार्य ही लाभदायक होता है। श्रद्धा से विहीनकार्य कभी भी इच्छित फल नहीं देता है।



सोम का अभिसेचन कर यजमान की श्रद्धा को प्रकट करता है (श्रद्धां वदन् सोमराजन् १।११३।४)। ऋषियों के द्वारा की गई स्तुति श्रद्धापूर्ण मन से इन्द्र के द्वारा सुनी गई (श्रद्धामनस्या शृणुतेदभीतये)। वाक्सूक्त में (ऋग् १०।१४५) कहा गया है- श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि। यहाँ पर श्रद्धा पद का सायण के द्वारा किया गया अर्थ- श्रद्धाबलेन लभ्यं ब्रह्मात्मकं वस्तु अर्थात् ब्रह्म को श्रद्धा के द्वारा ही जान सकते हैं अथवा प्राप्त कर सकते हैं। अन्य मन्त्रों में भी ऋषियों का श्रद्धा के प्रति अत्यन्त आदर की भवना है। श्रद्धासूक्त में तो देवतास्वरूप से ही श्रद्धा का चित्रण किया है। इस मन्त्र की ऋषिका श्रद्धा है, जो कामगोत्र में उत्पन्न हुई। उसके कारण से ही वह कामायनी इस नाम से विख्यात है।

इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही स्पष्ट किया गया है की श्रद्धा के द्वारा ही अग्नि प्रज्वलित होती है। श्रद्धा के द्वारा ही आहवनीय अग्नि में आहुति दी जाती है। इसका यह तात्पर्य है की यज्ञीय कार्यों में श्रद्धा की अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ अग्निज्ञान अग्नि का प्रतीक रूप भी कह सकते हैं। ज्ञान अग्नि की समिधा श्रद्धा के द्वारा ही पूर्ण होती है। इस श्रद्धा की उपासना केवल मनुष्य नहीं करते, अपितु देवता भी असुरों के साथ युद्धकाल में श्रद्धा के आश्रित होकर के ही अपने मनोरथ को पूर्ण किया। अन्य मन्त्र में मनोवैज्ञानिक तथ्य का रोचक विश्लेषण है -

श्रद्धां हृदय्याकृत्या श्रद्धया विन्दते वसु। इति॥

हृदय में उत्पन्न सङ्कल्प से श्रद्धा की उपासना होती है। प्रथम तो साधक के चित्त में सङ्कल्प का उदय होता है, उसके बाद ही वह किसी कार्य को करने में अपने को प्रवृत्त होता है। श्रद्धा के द्वारा धन की प्राप्ति होती है। यहाँ वसु इस पद से भौतिकद्रव्य का सङ्केत नहीं है, किन्तु आध्यात्मिककल्याण का है। अज्ञान का विनाशकरके अमरत्व की प्राप्ति ही आध्यात्मिक धन है। अमरता को प्राप्त करने का प्रधान साधन यह श्रद्धा ही है। अन्तिम में प्रार्थना है - **श्रद्धे श्रद्धापये ह नः। इति॥** उपनिषदों में श्रद्धातत्त्व की जो महानता प्रकट की गई उसका बीज इस प्रसिद्ध सूक्त में ही प्राप्त होता है।



पाठ का सार

इस पाठ में श्रद्धासूक्त के पाच मन्त्र लिखे गये हैं। इन पांच मंत्रों में जो साररूप से कहा गया है उसको ही यहाँ पर साररूप से कहते हैं। इन पांच मंत्रों में श्रद्धा के मुख्यरूप से क्या क्या कर्तव्य होने चाहिए उसको कहा गया है। श्रद्धा के विविध रूप और प्रयोजन को प्रदर्शित किये गए हैं। यज्ञ में भोजन में दान दक्षिणा में श्रद्धा का विधान किया गया है, श्रद्धा से ही वह उस फल को प्राप्त करता है इत्यादि विषय प्रथममन्त्र कहे गए हैं। द्वितीय मन्त्र में श्रद्धा के प्रति कहा गया है की हे श्रद्धा मेरे द्वारा इस कहे गये वचन को, दानदेकर के मनुष्यों का कल्याण करो, हे हमेशा रहने वाली श्रद्धा ! देने की इच्छा वालो का कल्याण करो, दान के भोक्ता का दक्षिणा में प्राप्त ऋत्विग के समान कल्याणकरो। तृतीय मन्त्र में कहा गया है की जैसे क्रूर अथवा दुष्ट मनुष्यों पर सन्यासी विद्वान उचित को धारण करने वाली दैवीशक्ति को प्रेरित करती है, इसी प्रकार



टिप्पणियाँ

भोजनदाताओं में तथा यजमानों में हमारा इस आशीर्वाद को कल्याणप्रद करो इस प्रकार श्रद्धा के प्रति प्रार्थना की गई है। चतुर्थ मन्त्र मर कहा गया की सन्यासी विद्वान् श्रद्धा को हृदय में स्थित करके उसका सेवन करते हैं, यजनशील प्राणायाम वायूरक्षक है जिनका वे उसके समान होकर के श्रद्धाका हमेशा सेवन करते हैं, वह सेवन करते हुए धन को प्राप्त होते हैं। अन्तिममन्त्र में श्रद्धा के प्रति कहा गया है की जो प्रातः काल में उसकी उपासना करते हुए परमात्मा से प्रीति करने के लिये उसको आमन्त्रित करते हैं, दिन के मध्ये में भी परमात्मा से प्रीति के लिए उसको आमन्त्रित करते हैं, और सायंकाल में भी परमात्मप्रीति के लिये उसको आमन्त्रित करते हैं, हे श्रद्धा आस्तिकभावना होने पर परमात्मा से प्रीति होने पर ! हमारे इस जीवन को श्रद्धामय बना दो।



पाठांत प्रश्न

(देवीसूक्त में)

1. देवीसूक्त का सार लिखो।
2. वागाम्भृणीदेवी की महिमा का वर्णन करो।
अहमेव स्वयमिदम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
3. अहं रुद्राय धनुरा ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
4. अहं सुवे पितरमस्य ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
5. अहमेव वतइव ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
6. अहं रुद्रेभिर्वसुभिर्द्धु इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
7. अहं सोममाहनसंद्धु ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
8. मया सो अन्नमत्तिद्धु ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
9. अतिसंक्षेप से देवीसूक्त का वर्णन करो।

(श्रद्धासूक्त में)

10. श्रद्धासूक्त का सार लिखो।
श्रद्धा के द्वारा क्या क्या करना चाहिए इस विषय का मन्त्र लिखकर सायनभाष्य के अनुसार व्याख्यान करो।
यथा देवा असुरेषु ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।
प्रियं श्रद्धे ददतः ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।
श्रद्धां प्रातर्हवामहे ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।



पाठगत प्रश्नों के उत्तर

देवीसूक्त में

19.1

1. वाक् ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, २ जगती, वाक् देवता।
2. सूक्त की द्रष्टा वागाम्भृणी।
3. अश्विना।
4. उभौ।
5. रुद्रेभिः।
6. रुद्र के समान होकर के।
7. मारना चाहिए।
8. सुपूर्वक प्रपूर्वक अच्-धातु से ईप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में।
9. धनो का।
10. यज्ञ को चाहने वालो का।
11. क्तिच्-धातु से क्वसुप्रत्यय और डीप करने पर प्रथमा एकवचन में।
12. जो नहीं मानते या जानते नहीं है।
13. प्रपूर्वक अच्-धातु से लट प्रथमपुरुष एकवचन में।
14. शृणु।
15. पुरुशब्द सेसप्तमी अर्थ में त्राप्रत्यय करने पर।

19.2

1. देवैः।
2. सेवा करना।
3. वेद में।
4. शोभना मेधा यस्य तम् यहाँ बहुव्रीहि समास है।
5. षष्ठी अर्थ में।
6. करोमि।
7. शृ-धातु से उप्रत्यय करने पर शरुः यह चतुर्थी एकवचन में हुआ।



टिप्पणियाँ



टिप्पणियाँ

8. हन्-धातु से तुमुन्प्रत्यय अर्थ में वैदिक तवैप्रत्यय करने पर।
9. विविध रूपों में व्याप्त होकर रहती हूँ।
10. सू-धातु से लट आत्मनेपद उत्तमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।
11. भुवनानि।
12. ऊपर अर्थ में।
13. तृतीया विभक्ति में।
14. अदस्-शब्द का तृतीया एकवचन में वैदिक रूप है।
15. वेद में।

श्रद्धासूक्त में

19.3

1. श्रद्धा कामायनी ऋषिका, अनुष्टुप् छन्द, और देवता श्रद्धा है।
2. गार्हपत्य आदि को कहा गया है।
3. सबसे ऊच स्थान पर।
4. घी पुरोडाश आदि देकर के।
5. किये गए यज्ञों में।
6. कुरु लौकिक रूप है।
7. संकल्परूप से किया गया कार्य।
8. धन।
9. श्रद्धावान मनुष्य धन को प्राप्त करते हैं।
10. प्रज्वलित करते हैं।

॥ उन्नीसवां पाठ समाप्त ॥

